राजस्थान उच्च न्यायालय जोधपुर

एसबी आपराधिक अपील (एसबी) संख्या 254/2020

कमल मीना पुत्र श्री बाबू लाल मीना, उम्र लगभग 32 वर्ष, निवासी ग्राम दबीर, पोस्ट बूकना तहसील सपोटरा, जिला करौली (राज.)। तत्कालीन कनिष्ठ अभियंता, अजमेर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड, गिलुंड, तहसील रेलमगरा, जिला उदयपुर.

----अपीलार्थी

बनाम

राज्य, जरिए पीपी

----प्रतिवादी

अपीलार्थी(गण) के लिए	:	श्री महेंद्र शांडिल्य श्री विक्रम बेनीवाल
प्रतिवादी के लिए	:	श्री वाईएस चरण, श्री एनके गुर्जर, जीए-सह-एएजी के सहायक

माननीय न्यायाधिपति श्रीमान मनोज कुमार गर्ग

निर्णय

आदेश आरक्षित तिथि : 18/03/2025

सुनाए जाने की तिथि : 26/03/2025

रिपोर्ट योग्य

अपीलार्थी द्वारा विशेष न्यायाधीश, सेशन न्यायालय (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम मामलें), उदयपुर द्वारा सेशन प्रकरण संख्या 58/2014 में पारित निर्णय दिनांकित 03.02.2020 के विरूद्ध वर्तमान आपराधिक अपील दायर की गई है, जिसके द्वारा विद्वान न्यायाधीश ने अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत अपराध के लिए दोषी ठहराया और उसे 5,000 /- रुपये के जुर्माने के साथ छह महीने के साधारण कारावास की सजा सुनाई और जुर्माना अदा न करने पर एक महीने के अतिरिक्त साधारण कारावास की सजा सुनाई।

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि दिनांक 03.12.2013 को परिवादी नाथू लाल (पीडब्लू-2) ने अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक, एसीबी चौकी राजसमंद के समक्ष एक लिखित रिपोर्ट (एक्स-पी/1) दर्ज कराई, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ आरोप लगाया कि जब वह अपनी कृषि भूमि पर बिजली कनेक्शन के लिए जारी किए गए डिमांड नोटिस की राशि जमा कराने के लिए ए.ई.एन. रेलमगरा के कार्यालय गया, तो उसे श्री कमल मीणा, जे.ई.एन. गिलुंड से संपर्क करने के लिए कहा गया। जब परिवादी कमल मीणा के पास पहुंचा तो उसने बिजली मीटर जारी करने के एवज में

2000-3000 रुपए की अवैध परितोषण की मांग की। शिकायत के आधार पर एसीबी ने मांग का सत्यापन किया और उसके बाद जाल बिछाया।

अभियोजन पक्ष के अनुसार, यद्यपि जाल बिछाने की योजना बनाई गई थी, लेकिन अपीलार्थी को शक हो गया और उसने अवैध परितोषण लेने से इनकार कर दिया। बाद में, अभियुक्त ने अपने दोस्तों के माध्यम से संदेश भेजा कि उससे गलती हो गई है और अनुरोध किया कि उसके खिलाफ कोई कार्यवाही न की जाए। हालाँकि, अवैध माँग के आधार पर, अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला पाया गया और इसलिए उसके विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज की गई और अन्वेषण आरम्भ किया गया।

गहन अन्वेषण के पश्चात्, अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपपत्र पेश किया गया। तत्पश्चात्, विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत आरोप विरचित किए। अभियुक्त अपीलार्थी ने आरोप से इन्कार कर अन्वीक्षा चाही।

विचारण अनुक्रम के दौरान, अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में चौदह गवाहों को परीक्षित किया और विभिन्न दस्तावेजों को प्रदर्शित करवाया। तत्पश्चात्, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत अपीलार्थी अभियुक्त के कथन अभिलिखित किये गये।। प्रतिरक्षा में कोई

गवाह परीक्षित नहीं किया गया, परंतु अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा कतिपय दस्तावेज प्रदर्शित करवाए गए।

विचारण की समाप्ति पर, विद्वान विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश दिनांकित 03.02.2020 द्वारा अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत दोषसिद्ध किया और दण्डादेश दिया। अतः अपीलार्थी की ओर से उसकी दोषसिद्धि के विरुद्ध यह आपराधिक अपील प्रस्तुत है।

अपीलार्थी के अधिवक्ता का तर्क है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत अपीलार्थी को सिद्धदोष कर विधिक त्रुटि की है, क्योंकि उसकी दोषसिद्धि को प्रमाणित करने के लिए कोई विश्वसनीय सामग्री या साक्ष्य अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है। अधिवक्ता ने दलील दी कि परिवाद (प्रदर्श-पी/1) के अनुसार, परिवादी सहायक अभियंता रेलमगरा के कार्यालय गया था, जहाँ उसे कमल मीणा, जे.ई.एन. गिलुंड (वर्तमान अपीलार्थी) से मिलने का निर्देश दिया गया था। परिवादी ने आगे दावा किया है कि इस मुलाकात से लगभग 10-15 दिन पहले, अपीलार्थी ने 2,000-3,000 रुपये की अवैध परितोषण की मांग की थी। अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषी ठहराने के लिए प्रतिलेख (प्रदर्श-पी/2) पर विश्वास व्यक्त किया; हालाँकि,

प्रतिलेख यह साबित करने में विफल रहा कि अपीलार्थी के पास कोई काम लंबित था। इसके अलावा, अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, अपीलार्थी ने न तो कोई धन स्वीकार किया और न ही परिवादी के साथ किसी प्रकार की वार्ता में लिप्त था। इस प्रकार, यह सुस्पष्ट है कि अपीलार्थी के कब्जे से कोई अवैध परितोषण बरामद नहीं हुआ।

अधिवक्ता ने यह भी इंगित किया कि परिवादी, जिसने पीडब्लू-02 के रूप में साक्ष्य दी, ने स्पष्ट रूप से कथन किया कि जब वह ए.ई.एन. के कार्यालय गया था, तो दो व्यक्ति मौजूद थे, जिनमें से एक अपीलार्थी था। परिवादी ने साक्ष्य दी कि दूसरे व्यक्ति ने कनेक्शन लेने के लिए 2,500 रुपए की मांग की थी। यद्यपि, इस दूसरे व्यक्ति की परिवादी ने पहचान नहीं की थी, न ही उसके खिलाफ कोई शिकायत दर्ज की गई थी। इसके अतिरिक्त, परिवाद में इस व्यक्ति का कोई उल्लेख नहीं था। तत्पश्चात्, विचारण न्यायालय ने परिवादी (पीडब्लू-2) को पक्षद्रोही घोषित कर दिया। अपनी जिरह में, परिवादी ने अभिसाक्ष्य दिया कि उसने वास्तव में 13,500 रुपये का भुगतान किया था, लेकिन ग्रामीणों ने उसे यह कहकर उकसाया था कि जब तक वह राशि का भुगतान नहीं करता, उसे कनेक्शन नहीं मिलेगा। इसके अतिरिक्त, अन्वेषण अधिकारी गोपाल स्वरूप मेवाड़ा (पीडब्लू12) के परिसाक्ष्य के अनुसार, उन्होंने परिवादी और अपीलार्थी के

मध्य प्रतिलेख की फर्द में अंकित बातचीत को संयोगवश भी नहीं सुना। उन्होंने आगे स्वीकार किया कि न तो अधिकारियों और न ही अपीलार्थी के किसी सहकर्मी ने प्रतिलेख में कथित बातचीत की पहचान की थी। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी की आवाज का नमूना परीक्षण के लिए न्यायालयिक प्रयोगशाला (एफएसएल) नहीं भेजा गया था। लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय पारित करते समय मामले के इन सभी पहलुओं पर विचार नहीं किया और इस प्रकार अपीलार्थी को अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत अपराध के लिए गलत तरीके से दोषसिद्ध किया और दण्डादेश दिया। इसलिए, आक्षेपित निर्णय अपने आप में अवैध होने के कारण अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है।

राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान एएजी ने तर्क दिया कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत दोषसिद्ध कर सही दण्डादेश दिया है क्योंकि उसके विरुद्ध अपराध करने के पर्याप्त साक्ष्य मौजूद हैं। यह आक्षेपित निर्णय न्यायसंगत और उचित है तथा इस न्यायालय से किसी हस्तक्षेप की अपेक्षा नहीं करता।

पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना गया और आक्षेपित निर्णय तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का परिशीलन किया गया।

प्रथमतः, सुगम संदर्भ के लिए अधिनियम की धारा 7 और 20 को पुनः उद्धृत करना उचित समझा गया:

"धारा-7. किसी शासकीय कृत्य के संबंध में वैध पारिश्रमिक से भिन्न परितोषण लेने वाला लोक सेवक।-

जो कोई लोक सेवक होने के नाते या होने की अपेक्षा रखते हुए, किसी व्यक्ति से अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए, कानूनी पारिश्रमिक के अलावा किसी भी प्रकार का परितोषण, किसी शासकीय कृत्य को करने या करने से प्रविरत रहने के लिए या अपने शासकीय कृत्यों के प्रयोग में किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या प्रतिकूलता प्रदर्शित करने या प्रदर्शित करने से प्रविरत रहने के लिए, हेतु या ईनाम के रूप में स्वीकार करता है या अभिप्राप्त करता है या स्वीकार करने के लिए सहमत होता है या अभिप्राप्त करने का प्रयास करता है, केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार या संसद या किसी राज्य के विधानमंडल के साथ या धारा 2 के खंड (ग) में निर्दिष्ट किसी स्थानीय प्राधिकरण, निगम या सरकारी कंपनी के साथ या किसी लोक सेवक के साथ, चाहे नामित हो या अन्यथा, वह कारावास से,

जो तीन वर्ष से कम नहीं होगा किन्तु जो सात वर्ष तक बढ़ाया जा सकेगा, दण्डनीय होगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

स्पष्टीकरण.-

(क) "लोक सेवक होने की अपेक्षा रखने वाला"— यदि कोई व्यक्ति, जो लोक पद पर आसीन होने की अपेक्षा नहीं रखता, दूसरों को इस विश्वास में धोखा देकर कि वह शीघ्र ही लोक पद पर आसीन होने वाला है और तब उनकी सेवा करेगा, कोई परितोषण अभिप्राप्त करता है, तो वह व्यक्ति छल (cheating) का दोषी हो सकता है, किंतु इस धारा में परिभाषित अपराध का दोषी नहीं होगा ।

(ख) "परितोषण"। "परितोषण" शब्द केवल धन सम्बंधी परितोषण या धन में अनुमानित परितोषण तक ही सीमित नहीं है।

(ग) "कानूनी पारिश्रमिक" - "कानूनी पारिश्रमिक" शब्द उस पारिश्रमिक तक सीमित नहीं है जिसे कोई लोक सेवक विधिपूर्वक मांग सकता है, बल्कि इसमें वह समस्त पारिश्रमिक

शामिल है जिसे स्वीकार करने की अनुमति उसे सरकार या उस संगठन द्वारा दी गई है, जिसमें वह सेवा करता है।

(घ) "कार्य करने के लिए हेतु या ईनाम"। कोई व्यक्ति जो किसी ऐसे कार्य के लिए हेतु या ईनाम के रूप में परितोषण प्राप्त करता है जिसे करने के लिए वह आशयित नहीं है या जो करने के पद पर नहीं है, या जिसे उसने नहीं किया है, इस अभिव्यक्ति के अंतर्गत आता है।

(ई) जहां कोई लोक सेवक किसी व्यक्ति को यह विश्वास दिलाने के लिए गलत ढंग से उत्प्रेरित करता है कि सरकार पर उसके प्रभाव से उस व्यक्ति के लिए कोई उपाधि प्राप्त हो गई है और इस प्रकार वह उस व्यक्ति को इस सेवा के बदले में लोक सेवक को धन या कोई अन्य परितोषण देने के लिए उत्प्रेरित करता है, तो लोक सेवक ने इस धारा के अधीन अपराध किया है।

20. उपधारणा जहां लोक सेवक कोई अनुचित लाभ स्वीकार करता है। [2018 के अधिनियम संख्या 16, दिनांक 26.7.2018 द्वारा प्रतिस्थापित।]

- जहां धारा 7 या धारा 11 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के किसी विचारण में यह साबित हो जाता है कि किसी अपराध के आरोपी लोक सेवक ने अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए किसी व्यक्ति से कोई अनुचित लाभ स्वीकार किया है या अभिप्राप्त किया है या स्वयं के लिए अभिप्राप्त करने का प्रयास किया है, तब तक यह माना जाएगा, जब तक कि तत्प्रतिकूल साबित न हो जाए, कि उसने उस अनुचित लाभ को धारा 7 के अंतर्गत एक हेतु या इनाम के रूप में स्वीकार किया या अभिप्राप्त किया या अभिप्राप्त करने का प्रयास किया, या तो स्वयं या किसी अन्य लोक सेवक द्वारा अनुचित या बेईमानी से लोक कृत्य का पालन कराने के लिए या, जैसा भी मामला हो, बिना किसी प्रतिफल के या ऐसे प्रतिफल के लिए कोई अनुचित लाभ, जिसे वह जानता है कि धारा 11 के अंतर्गत अपर्याप्त है।] [2018 के अधिनियम संख्या 16 दिनांक 26.7.2018 द्वारा अंतर्लिखित।]

दोहरी शर्तें अर्थात एक लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग तथा स्वीकृति को साबित किया जाना विवाद्यक तथ्य के रूप में अभियोजन द्वारा आरोपी लोक सेवक को अधिनियम

की धारा 7 के अंतर्गत दोष स्थापित किये जाने के क्रम में अनिवार्य है। अभियुक्त को सजा दिलाने के लिए, अभियोजन पक्ष को प्रत्यक्ष साक्ष्य या परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा 'अवैध परितोषण' की माँग और उसकी 'बाद में स्वीकृति' को सिद्ध करना होगा।

भ्रष्टाचार के विरुद्ध लड़ाई में इन दोनों धाराओं के बीच संबंध स्पष्ट और महत्वपूर्ण है। धारा 7, शासकीय कर्तव्यों के अनुचित पालन के बदले में किसी लोक सेवक द्वारा रिश्वत या परितोषण लेने के कृत्य को अपराध घोषित करती है। यह लोक शासकों के भ्रष्ट आचरण के प्रविषय को परिनिश्चत करती है और अभियोजन के लिए कानूनी आधार उपवर्णित करती है। धारा 20 इसे इस प्रकार पूरक बनाती है कि वह एक उपधारणा स्थापित करके विधिक प्रक्रिया को सरल करती है कि यदि कोई लोक सेवक अनुचित लाभ स्वीकार करता है, तो यह माना जाएगा कि उसने पदीय कर्तव्य का अनुचित पालन किया है। धारा 20 में यह उपधारणा, रिश्वत लेने के कृत्य के पीछे के आशय को साबित करने में आने वाली कुछ कठिनाइयों को दूर करके, धारा 7 के अंतर्गत आरोपी लोक सेवक के विरुद्ध मामले को मजबूत बनाता है। संक्षेप में, ये धाराएँ मिलकर भ्रष्टाचार के अभियोजन के

लिए एक मजबूत कानूनी ढाँचा तैयार करती हैं, यह सुनिश्चित करती हैं कि रिश्वतखोरी में लिप्त लोक सेवकों को जवाबदेह ठहराया जाए, और ऐसे मामलों में भी दोषसिद्धि सुनिश्चित करना आसान बनाती हैं जहाँ प्रत्यक्ष साक्ष्य दुर्लभ हैं। अपराध को परिनिश्चित करने और भ्रष्ट आशय की उपधारणा करने की यह दोहरी क्रियाविधि, ऐसे अपराधों के परिणामों को उजागर करके तथा अपराधियों के अभियोजन को सुगम बनाकर, सार्वजनिक कार्यालयों में भ्रष्ट आचरण को रोकने के लिए परिकल्पित है।

प्रासंगिक रूप से, यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि संवैधानिक पीठ ने ***नीरज दत्ता बनाम राज्य (दिल्ली के एनसीटी)*** में ***(2023) 4 एससीसी 731*** में रिपोर्ट की गई इस विवाद्यक का उत्तर दिया है कि 'क्या परिवादी की साक्ष्य/अवैध परितोषण की मांग के प्रत्यक्ष या प्राथमिक साक्ष्य के अभाव में, अभियोजन पक्ष द्वारा सकारात्मक रूप से प्रस्तुत अन्य साक्ष्य के आधार पर अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत एक लोक सेवक की अपराध/दोषिता की एक अनुमानात्मक कटौती करने की अनुमति है', निम्नलिखित निष्कर्षों के साथ:-

"88. उपर्युक्त चर्चा से जो बात उभर कर सामने आई है, उसका सारांश इस प्रकार है:

88.1. (क) लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग तथा स्वीकृति को साबित किया जाना विवाद्यक तथ्य के रूप में अभियोजन द्वारा आरोपी लोक सेवक को अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(डी)(i) और (ii) के अंतर्गत दोष स्थापित किये जाने के क्रम में अनिवार्य है।

88.2. (ख) अभियुक्त के अपराध को सिद्ध करने के लिए, अभियोजन पक्ष को पहले अवैध परितोषण की माँग और उसके बाद की स्वीकृति को तथ्य के रूप में सिद्ध करना होगा। इस विवाद्य तथ्य को प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया जा सकता है, जो मौखिक साक्ष्य या दस्तावेज़ी साक्ष्य की प्रकृति का हो सकता है।

88.3. (ग) इसके अतिरिक्त, विवाद्य तथ्य, अर्थात् अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति का प्रमाण, प्रत्यक्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के अभाव में परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा भी साबित किया जा सकता है।

88.4. (घ) विवाद्य तथ्यों को साबित करने के क्रम में, अर्थात्, लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति, निम्नलिखित पहलुओं को ध्यान में रखना होगा:

(i) यदि रिश्वत देने वाले द्वारा लोक सेवक की ओर से कोई मांग किए बिना भुगतान का प्रस्ताव दिया जाता है और लोक सेवक प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है और अवैध परितोषण प्राप्त कर लेता है, तो यह अधिनियम की धारा 7 के अनुसार स्वीकृति का मामला होगा। ऐसे मामले में, लोक सेवक द्वारा पूर्व मांग किए जाने की आवश्यकता नहीं है।

(ii) दूसरी ओर, यदि लोक सेवक कोई मांग करता है और रिश्वत देने वाला मांग स्वीकार कर लेता है और मांगी गई परितोषण राशि दे देता है जिसे लोक सेवक प्राप्त कर लेता है, तो यह अभिप्राप्ति का मामला है। अभिप्राप्ति के मामले में, अवैध परितोषण की पूर्व मांग लोक सेवक की ओर से होती है।

यह अधिनियम की धारा 13(1) (डी) (i) और (ii) के अंतर्गत अपराध है ।

(iii) उपर्युक्त (i) और (ii) दोनों मामलों में, रिश्वत देने वाले द्वारा की गई पेशकश और लोक सेवक द्वारा की गई मांग को क्रमशः अभियोजन पक्ष द्वारा विवाद्य तथ्य के रूप में सिद्ध किया जाना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, बिना किसी पूर्व सूचना के अवैध परितोषण की मात्र स्वीकृति या प्राप्ति

कुछ भी इसे अधिनियम की धारा *7* या धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अंतर्गत अपराध नहीं बनाएगा। इसलिए, अधिनियम की धारा *7* के अंतर्गत, अपराध सिद्ध करने के लिए, रिश्वत देने वाले की ओर से एक प्रस्ताव होना चाहिए जिसे लोक सेवक द्वारा स्वीकार किया जाए, तभी यह अपराध बनेगा।

इसी प्रकार, लोक सेवक द्वारा की गई पूर्व मांग, जब रिश्वत देने वाले द्वारा स्वीकार कर ली जाती है और बदले में भुगतान किया जाता है, जिसे लोक सेवक द्वारा प्राप्त किया जाता है, तो यह अधिनियम की धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) के अंतर्गत अभिप्राप्ति का अपराध होगा।

88.5. (ई) अवैध परितोषण की मांग, स्वीकृति या अभिप्राप्ति के संबंध में तथ्य की उपधारणा न्यायालय द्वारा अनुमान के आधार पर तभी की जा सकती है जब मूल तथ्य प्रासंगिक मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा सिद्ध हो गए हों, न कि उनके अभाव में। अभिलेख में उपलब्ध सामग्री के आधार पर, न्यायालय को यह विचार करते समय तथ्य की धारणा बनाने का विवेकाधिकार है कि मांग का तथ्य अभियोजन पक्ष द्वारा सिद्ध किया गया है या नहीं। निःसंदेह, एक धारणा अभियुक्त द्वारा

खंडन के अधीन है और खंडन के अभाव में उपधारणा कायम रहती है।

88.6. (च) यदि परिवादी पक्षद्रोही हो जाता है, या उसकी मृत्यु हो जाती है या वह विचारण के दौरान अपनी साक्ष्य देने के लिए उपलब्ध नहीं होता है, तो अवैध परितोषण की माँग किसी अन्य साक्षी की साक्ष्य देकर साबित की जा सकती है जो मौखिक रूप से या दस्तावेज़ी साक्ष्य के माध्यम से फिर से साक्ष्य दे सके, या अभियोजन पक्ष परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा मामले को साबित कर सकता है। इससे विचारण का न तो शमन होता है और न ही आरोपी लोक सेवक को बरी करने का आदेश दिया जाता है।

88.7. (छ) जहाँ तक अधिनियम की धारा 7 का संबंध है, विवाद्य तथ्यों के प्रमाण पर, धारा 20 न्यायालय को यह उपधारणा करने का आदेश देती है कि अवैध परितोषण उक्त धारा में उल्लिखित किसी हेतु या ईनाम के लिए था। उक्त उपधारणा को न्यायालय द्वारा विधिक उपधारणा या विधिक उपधारणा के रूप में उठाया जाना चाहिए। निःसंदेह, उक्त

उपधारणा खंडन के अधीन भी है। धारा 20 अधिनियम की धारा 13(1)(घ)(i) और (ii) पर लागू नहीं होती है।

88.8. (एच) हम स्पष्ट करते हैं कि अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत कानून में उपधारणा, उप-पैरा 88.5 (ई) में निर्दिष्ट तथ्य की उपधारणा से सुभिन्न है, क्योंकि पूर्व वाली एक आज्ञापक उपधारणा है जबकि पश्चात्कथित वैवेकीक प्रकृति की है।

संविधान पीठ ने निश्चायक रूप से फैसला सुनाया है कि किसी लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग (या प्रस्ताव) और स्वीकृति का सबूत आपराधिक कार्यवाही में एक महत्वपूर्ण तथ्य है और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के लिए एक सारभूत आवश्यकता है। न्यायालय के समक्ष संतोषप्रद साक्ष्य का अभाव साबित करता है कि अवैध परितोषण की मांग एवं स्वीकृति हुई थी, अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत उपधारणा का अवलम्ब नहीं लिया जा सकता है। केवल आरोपों के आधार पर उपधारणा एकमात्र रूप से उद्भूत नहीं हो सकती, जैसा कि अपीलार्थी ने सही ढंग से बताया है। वर्तमान मामले में, परिवादी ने इस आरोप से इनकार किया कि अपीलार्थी ने रिश्वत की मांग की थी, और विचारण न्यायालय ने उसे पक्षद्रोही घोषित कर दिया

था। इसके अतिरिक्त, अन्वेषण अधिकारी, पी.डब्लू-12 के रूप में परीक्षित, ने स्वीकार किया कि अपीलार्थी की आवाज अपीलार्थी के कार्यालय के किसी भी अधिकारी द्वारा पहचानी नहीं गई थी, तथा न्यायालयिक प्रयोगशाला (एफएसएल) में विश्लेषण के लिए आवाज का कोई भी नमूना नहीं भेजा गया था। गवाहों ने भी यह साक्ष्य दिया कि जाल सफल नहीं हुआ और अपीलार्थी से कोई अवैध परितोषण बरामद नहीं हुआ था।।

स्वीकार्यतः, जाल बिछाया जाना नियोजित था तथा परिवादी की शिकायत के आधार पर संचालित किया गया था, लेकिन यह परिणाम उत्पन्न करने में विफल रहा। अभियोजन पक्ष के अनुसार, अपीलार्थी ने परिवादी से मौके पर संपर्क किया, लेकिन बिना कोई बातचीत किए वापस चला गया। इस प्रकार, अपीलार्थी ने न तो कोई धन लिया और न ही उससे कोई धन बरामद किया गया। परिवादी की परिसाक्ष्य अभियोजन पक्ष के मामले को और जर्जरित कर देती है क्योंकि उसने रिश्वतखोरी के आरोपों का खंडन किया और पक्षद्रोही घोषित हुआ था। चूंकि अवैध परितोषण की मांग या स्वीकृति की कोई साक्ष्य पेश नहीं की गई थी, तथा बिछाया गया जाल विफल रहा, अभियोजन पक्ष अपने मामले को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित नहीं कर पाया। इस प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 20 के

अंतर्गत उपधारणा लागू नहीं की जा सकती और अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोप निराधार हैं।

डायरी सं. 46289/2024 में दिनांक 27.02.2025 को निस्तारित ***दिलीपभाई संघानी बनाम गुजरात राज्य व अन्य*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि:-

> 22. एकमात्र आरोप प्राधिकार के दुरुपयोग से संबंधित है जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत नहीं आता है और रिश्वत मांगने, अभिप्राप्त करने या स्वीकार करने या किसी भी अवैध परितोषण से संबंधित कोई भी घटक सामने नहीं आया है। आरोप केवल इतना था कि राज्य की नीति के अनुसार निविदा प्रक्रिया अपनाई जानी आवश्यक थी, लेकिन मंत्री ने मछली पकड़ने के अधिकार को प्ररक्षित कीमत पर स्वीकृत कर दिया था, जो कि प्राधिकार का दुरुपयोग माना जाता है, खासकर तब जब नीति दस्तावेज़ और निर्धारित कार्य नियमों के अनुसार, नीति से केवल मुख्यमंत्री या मंत्रिमंडल के आदेश पर ही विचलन किया जा सकता है। जैसा कि हमने देखा, अन्वेषण रिपोर्ट में अपीलार्थी के विरुद्ध रिश्वत मांगने और स्वीकार करने के किसी भी आरोप के बिना, केवल अधिकार के दुरुपयोग का आरोप लगाया गया है। अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत यह उपधारणा है कि यदि रिश्वत की मांग और स्वीकृति होती है, तो यह उपधारणा होती है कि यह किसी लोक सेवक द्वारा बेईमानी से कोई कार्य किया जा रहा है, जिसके लिए

पहले मांग और स्वीकृति का सबूत प्रस्तुत करना होगा। अन्यथा नहीं, यदि प्राधिकार का दुरुपयोग होता है तो रिश्वत की मांग और स्वीकृति की हमेशा ही उपधारणा बनी रहती है, जिसके परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार का वैध आरोप बनता है।

23. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता हमें अन्वेषण रिपोर्ट में अभिलिखित कथनों की ओर भी ले गए, जो केवल राज्य मंत्री, पहले अभियुक्त तथा द्वितीय अभियुक्त के विरुद्ध नहीं, द्वारा की गई ऐसी मांग के सम्बंध में है। हम अपीलार्थी द्वारा उठाए गए इस प्रतिविरोध को स्वीकार करते हैं कि अन्वेषण रिपोर्ट, परिवादी या पुलिस अधिकारियों से अभिलिखित किए गए आरोप-पूर्व बयानों या यहां तक कि अन्वेषण दल द्वारा पूछताछ किए गए व्यक्तियों के बयानों से, जैसा कि रिपोर्ट में उपलब्ध है, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधानों के तत्वों को आकर्षित करने के लिए लेशमात्र भी सामग्री उपलब्ध नहीं है। हम इस मत के है कि अपीलार्थी के उन्मोचन आवेदन को विशेष न्यायालय द्वारा स्वीकार कर दिया जाना चाहिए था, चूंकि द्वितीय अभियुक्त/अपीलार्थी द्वारा रिश्वत की मांग और स्वीकृति किए जाने का कोई आरोप भी नहीं है।

24. हम यह स्पष्ट करते हैं कि प्रथम अभियुक्त के संबंध में हमारे द्वारा की गई टिप्पणियां, जहां तक आरोप लगाए गए हैं, केवल इस बात पर जोर देने के लिए हैं कि यहां अपीलार्थी के विरुद्ध ऐसा कोई अभियोग भी नहीं है।

इमाम साहब मौलसाब तोरागल बनाम कर्नाटक राज्य (आपराधिक अपील संख्या 2553/2013) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ए. सुबैर बनाम केरल राज्य (2009) 6 एससीसी 507 में पहले के फैसले पर विचार किया, जिसमें यह देखा और अभिनिर्धारित किया गया था कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7, 13(1)(डी)/13(2) के अंतर्गत दंडनीय अपराध की सजा का आदेश सुरक्षित करने के लिए, अभियोजन पक्ष को निम्नलिखित घटक स्थापित करने होंगे:-

1. रिश्वत की मांग और स्वीकृति।

2. ट्रैप के दिन अभियुक्त द्वारा दूषित धन का संचालन (रंग परीक्षण)।

3. ट्रैप की तिथि तक परिवादी का कार्य अभियुक्त के पास लंबित होना चाहिए।

चंद्रेश बनाम कर्नाटक राज्य लोकायुक्त पुलिस कलबुर्गी के मामले में आपराधिक अपील संख्या 200105/2015, जिस पर 16.2.2022 को निर्णय हुआ था**,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जब ट्रैप की तिथि तक परिवादी का कार्य अभियुक्त के पास लंबित नहीं है, तो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7, 13(1)(डी)/13(2) के अंतर्गत दंडनीय अपराध को आकर्षित करने और पूरा करने के लिए महत्वपूर्ण तत्व

कायम नहीं रह सकते। कर्नाटक बनाम नारायणस्वामी में आपराधिक अपील संख्या 2506/2012 में भी यही विचार व्यक्त किया गया था ।

ए. सुबैर बनाम केरल राज्य के मामले में ***(2009) 6 एससीसी 507*** में रिपोर्ट की गई, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 28 में निम्नानुसार कथन किया गया : -

> "28. इस बात पर जोर देने की कोई आवश्यकता नहीं है कि अभियोजन पक्ष को किसी अन्य आपराधिक अपराध की तरह आरोप को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करना होगा और अभियुक्त को तब तक निर्दोष माना जाना चाहिए जब तक कि अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति के उचित सबूत द्वारा अन्यथा स्थापित न हो जाए, जो कि विचाराधीन अपराधों के लिए दोषसिद्धि प्राप्त करने के लिए आवश्यक महत्वपूर्ण घटक है।"

सौंदराजन बनाम राज्य प्रतिनिधि, पुलिस सतर्कता भ्रष्टाचार निरोधक निरीक्षक द्वारा डिंडीगुल में ***एआईआर 2023 एससी 2136*** में रिपोर्ट किया गया, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कानून को इस प्रकार बताया:-

> "11..... भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 को लागू करने के लिए, अभियोजन पक्ष द्वारा युक्तियुक्त संदेह से परे परितोषण की मांग साबित की जानी चाहिए। धारा 7 में प्रयुक्त शब्द, जैसा कि यह 26 जुलाई 2018 से पहले अस्तित्व में था,

'परितोषण' है। परितोषण की मांग होनी चाहिए। यह धन के लिए कोई साधारण मांग नहीं है, बल्कि यह परितोषण की मांग होनी चाहिए। यदि परितोषण की मांग और उसकी स्वीकृति का तथ्य साबित हो जाता है, तो धारा 20 के अंतर्गत उपधारणा का अवलम्ब लिया जा सकता है, तथा न्यायालय यह उपधारणा कर सकती है कि मांग किसी भी शासकीय कार्य को करने के लिए एक हेतु या ईनाम के रूप में होनी चाहिए। इस उपधारणा का खंडन अभियुक्त द्वारा किया जा सकता है। "

कर्नाटक राज्य बनाम चंद्रशा के मामले में आपराधिक अपील संख्या 2646/2024, जिसका निर्णय 26.11.2024 को हुआ, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

यह स्थापित विधि है कि दो मूल तथ्य अर्थात, परितोषण की 'मांग' और 'स्वीकृति' साबित हो चुके हैं, धारा 20 के अंतर्गत उपधारणा उस प्रभाव तक लागू की जा सकती है कि परितोषण की मांग की गई थी तथा हेतु या ईनाम के रूप में स्वीकार की गई थी, जैसा कि अधिनियम की धारा 7 के अधीन अनुध्यात किया गया है। हालाँकि, ऐसी उपधारणा खंडनीय है। अधिसंभाव्यता की प्रबलता के आधार पर भी, अभियुक्त इसका खंडन कर सकता है। वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष ने परिवादी से रिश्वत राशि की 'मांग' और 'स्वीकृति' तथा प्रतिवादी के कब्जे से दूषित मुद्रा नोटों की बरामदगी के संबंध में, अपने मामले को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित कर दिया। उक्त क्रिया

> टेप रिकॉर्डर में मांग की रिकॉर्डिंग से पहले की गई है। ऐसी परिस्थितियों में, प्रतिवादी को अभियोजन पक्ष के गवाहों से प्रतिपरीक्षा करके या तात्विक साक्ष्य पेश करके अभियोजन पक्ष के मामले को गलत साबित करके इस उपधारणा का खंडन करना होगा कि 2,000 रुपये की प्राप्ति रिश्वत की राशि नहीं, बल्कि विधिक शुल्क या ऋण का प्रतिसंदाय था। हालाँकि, वह ऐसा करने में विफल रहा और इसके विपरीत, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष ने मामले को संदेह से परे साबित कर दिया है।

उद्धृत मामले में, अभियोजन पक्ष ने अवैध रिश्वत की मांग और स्वीकृति के महत्वपूर्ण तत्वों को सफलतापूर्वक स्थापित किया। हालाँकि, वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष इन आवश्यक तत्वों को साबित करने में विफल रहा है। रिकॉर्ड से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि परिवादी का अपीलार्थी के पास कोई लंबित कार्य नहीं था, न तो परिवाद दर्ज होने की तिथि पर और न ही ट्रैप की तिथि पर। इसलिए, अपराध का एक महत्वपूर्ण तत्व—अर्थात, लोक सेवक के पास लंबित कार्य के अस्तित्व का पूरी तरह से अभाव है। इसके अतिरिक्त, इस मामले में धन की कोई वसूली नहीं हुई है। अपीलार्थी और परिवादी के बीच अभिकथित बातचीत के संबंध में, जिसमें कथित तौर पर मांग की गई थी, यह उल्लेखनीय है कि अपीलार्थी की आवाज का नमूना न तो न्यायालयिक प्रयोगशाला परीक्षण के लिए भेजा गया था और न ही किसी अधिकारी द्वारा उसकी पहचान की गई थी।

परिणामस्वरूप, अभियोजन पक्ष अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति को सिद्ध करने में विफल रहा है। उद्धृत मामले के विपरीत, जहाँ ये तत्व सिद्ध हो गए थे, वर्तमान मामले में, वे नासाबित रहे हैं, और अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप पर्याप्त साक्ष्य के बिना हैं।

विधिक सबूत के मानक की अवधारणा पर आगे बढ़ते हुए, आपराधिक न्यायशास्त्र का यह सुस्थापित सिद्धांत कि अभियुक्त को निर्दोष माना जाए, और इसलिए, अभियुक्त के अपराध को उचित संदेह से परे साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर होता है, इस पर यहां विचार करना आवश्यक है।

सुजीत बिस्वास बनाम असम राज्य (2013) 12 एससीसी 406 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

> आपराधिक मामलों में न्याय प्रशासन के ताने-बाने में व्याप्त स्वर्णिम सिद्धांत की पुनरावृत्ति की गई है। यह भी माना गया है कि संदेह, चाहे कितना भी गंभीर क्यों न हो, सबूत की जगह नहीं ले सकता और अभियोजन पक्ष अपने मामले को "शायद सच हो" के दायरे में नहीं रख सकता, बल्कि उसे किसी भी संभावित अनुमान या अटकलबाज़ी से बचने के लिए इसे "जरूर सच होना चाहिए" के दायरे में उन्नत करना होगा। इस प्रकार, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का, जब ऊपर उल्लिखित विधिक

> सिद्धांतों की कसौटी पर संक्षिप्त रूप से प्रतिपादित किया जाता है, तो इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि अभियोजन पक्ष, इस मामले में, अवैध परितोषण की माँग को स्पष्ट रूप से साबित करने में विफल रहा है।

उपरोक्त तार्किकता का संक्षेप और सार यह दर्शाता है कि ऐसा कोई स्वीकार्य या निर्णायक साक्ष्य नहीं है जो यह साबित कर सके कि अपीलार्थी ने बेईमान आशय से कोई कार्य किया है और कोई मूल्यवान वस्तु या धनीय लाभ अभिप्राप्त किया है।

पूर्वगामी चर्चा को दृष्टि में रखते हुए, अपील स्वीकार की जाती है। सत्र प्रकरण संख्या 58/2014 में विद्वान विशेष न्यायाधीश, सत्र न्यायालय (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम मामलें), उदयपुर द्वारा दिनांक 03.02.2020 को पारित आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है और अभियुक्त-अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत अपराध से दोषमुक्त किया जाता है। अपीलार्थी जमानत पर है, अतः उसके जमानत मुचलके निरस्त किये जाते हैं।

सीआरपीसी के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त अपीलार्थी को निर्देश दिया जाता है कि वह एक महीने की अवधि के भीतर विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष 50,000/- रुपये की राशि का स्वीय बंधपत्र और समान राशि का प्रतिभूति बंधपत्र प्रस्तुत करे, जो छह महीने की

अवधि के लिए प्रभावी होगा, इस आशय से कि निर्णय के खिलाफ या अनुमति प्रदान करने के लिए विशेष इजाजत याचिका दायर करने की स्थिति में, अपीलार्थी, इसकी सूचना प्राप्त होने पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष हाजिर होगा।

(मनोज कुमार गर्ग), जे

249-एमएस/-

अस्वीकरण: इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी आधिकारिक एवं व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेज़ी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निष्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।

अधिवक्ता अविनाश चौधरी